



# International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2019; 5(4): 286-288

© 2019 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 22-05-2019

Accepted: 24-06-2019

सन्ध्या राठौर

एसोसिएट प्रोफेसर

संस्कृत विभाग, हंसराज

महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय,

दिल्ली, भारत

## वैदिक ज्ञान के व्यावहारिक पक्ष (मन के सन्दर्भ में)

सन्ध्या राठौर

प्रस्तावना

विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय वेद है। वेद का सामान्य अर्थ है 'ज्ञान'। सायण के अनुसार वेद वह शब्दराशि है जो अभीष्ट प्राप्ति और अनिष्ट को दूर रखने का अलौकिक दिव्य उपाय बताता है<sup>1</sup>। उनके अनुसार, वेद का वेदत्व इस बात में है कि जो तत्त्व प्रत्यक्ष अथवा अनुमान प्रमाण द्वारा नहीं जाना जा सकता, उसे वेद से जानते हैं –

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।

एतं विदन्ति वेदेन तस्माद्देवस्य वेदता।।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद – इस प्रकार चार वेद हैं। इनमें से ऋग्वेद का सम्बन्ध ज्ञान से माना जाता है और यजुर्वेद का सम्बन्ध कर्म से। यज्ञ में देवता का आह्वान करने के लिए जिन मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है, वे मन्त्र ऋग्वेद में संगृहीत हैं और यज्ञ का विधिवत् सम्पादन करने के लिए जो मन्त्र आवश्यक हैं, उनका संकलन यजुर्वेद में है। यजुर्वेद की दो प्रमुख शाखाएँ हैं— शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। इनमें से शुक्ल यजुर्वेद के शिवसंकल्पसूक्त में मनोविज्ञान का सार प्रस्तुत किया गया है। इन मन्त्रों में वैदिक ऋषि अपने मन के विषय में प्रार्थना करता है कि उसका मन सदैव कल्याणकारी शुभ विचारों वाला हो<sup>2</sup>।

मनुस्मृति<sup>3</sup> में ग्यारह इन्द्रियों के विषय में बताया गया है : पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ— चक्षु , त्वक् , श्रोत्र, जिह्वा और नासिका, पाँच कर्मेन्द्रियाँ— हस्त, पाद, वाणी, पायु और उपस्थ<sup>4</sup> तथा मन। इन इन्द्रियों में से मन उभयेन्द्रिय<sup>5</sup> है। ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं – रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द। ज्ञानेन्द्रियाँ रूपादि इन विषयों का ग्रहण तभी कर सकती हैं जब इनका अपने विषय के साथ संयोग होता है। अभिप्राय यह है कि ज्ञानेन्द्रियाँ विषय को ग्रहण करने में सीमित शक्ति वाली हैं जबकि मन अपरिमित शक्ति वाला है। मन के द्वारा प्रेरित की गई इन्द्रिय ही अपने विषय की ओर प्रवृत्त होती है<sup>6</sup>।

यह मन मनुष्यों के हृदय में प्रतिष्ठित है अर्थात् उनके भीतर ही है। शरीर के वृद्ध या क्षीण होने पर भी मन में परिवर्तन नहीं होता। कठोपनिषद्<sup>7</sup> में इन्द्रियों को घोड़े बताया गया है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार रथ में घोड़े कार्य करते हैं वैसे ही शरीर में इन्द्रियाँ अपने विषयों का ग्रहण करती हैं। जिस प्रकार रथ के घोड़े लगाम से नियन्त्रित होकर चलते हैं वैसे ही श्रोत्रादि इन्द्रियाँ मन से नियन्त्रित होकर अपने विषयों में प्रवृत्त होती हैं। इसीलिए कठोपनिषद्<sup>8</sup> में मन को इन्द्रियरूपी घोड़ों की लगाम बताया गया है। यदि सारथि रथसञ्चालन में कुशल नहीं है और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति के विवेक से रहित है उसके अधीन घोड़े उसके वश में नहीं रहते और अनियन्त्रित हो जाते हैं। यदि मन संकल्प-विकल्परूप अपने कार्य में सक्षम नहीं है अर्थात् मन विवकेयुक्त और संयत नहीं है तो इन्द्रियाँ भी उस मन के अधीन नहीं रहती, अनियन्त्रित हो जाती हैं<sup>9</sup>। संकल्पविकल्पात्मक बुद्धि से युक्त जो सारथि सदा समाहितचित्त होकर मन को नियन्त्रण में रखता है उसके इन्द्रियरूपी घोड़े विवेक से युक्त होकर प्रवृत्ति तथा निवृत्ति में समर्थ होते हैं<sup>10</sup>।

यद्यपि उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय परब्रह्म के स्वरूप का विवेचन है और उनमें अध्यात्मज्ञान की महत्ता स्थापित की गई है उनमें भी इस प्रकार बताया गया है कि मन के द्वारा ही ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है। मन से ही यह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है कि 'सब कुछ आत्मा ही है और कुछ नहीं है।' इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त होने पर नानात्व को स्थापित करने वाली अविद्या की निवृत्ति हो जाती है<sup>11</sup>।

छान्दोग्योपनिषद्<sup>12</sup> में बताया गया है कि मन निधन है क्योंकि पुरुष की सम्पूर्ण इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए गए सभी भोग्यरूप विषय मन में ही रखे जाते हैं और वह इन्द्रियों के विषयों में व्यापक है।

Correspondence

सन्ध्या राठौर

एसोसिएट प्रोफेसर

संस्कृत विभाग, हंसराज

महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय,

दिल्ली

तात्पर्य यह है कि जो पदार्थ इन्द्रियों की पहुँच से बाहर है वह भी मन का विषय है। मन को आयतन कहा गया है<sup>13</sup> क्योंकि इन्द्रियों द्वारा लाए गए भोक्ता के प्रत्ययरूप विषयों का जो आयतन है वह मन ही है।

बृहदारण्यकोपनिषद्<sup>14</sup> में आत्मा को मन कहा गया है। इस नामरूप जगत् में आत्मा उसी प्रकार रहता है जैसे विश्व का भरण करने वाला अग्नि काष्ठ में। इसलिए वह आत्मा प्राणनक्रिया के कारण प्राण, बोलने के कारण वाक्, देखने के कारण चक्षु, सुनने के कारण श्रोत्र तथा मनन करने के कारण मन है। जो व्यक्ति कामना करता है कि 'मेरी स्त्री हो फिर मैं प्रजारूप से उत्पन्न होऊँ तथा मेरे पास धन हो, फिर मैं कर्म करूँ — जब तक इनमें से एक-एक को प्राप्त नहीं कर लेता अपनेआप को अपूर्ण मानता है। जब इन सभी का सम्पादन कर लेता है तभी उसकी पूर्णता होती है। जब उस पूर्णता का सम्पादन करने में वह समर्थ नहीं होता है तब उस अपूर्णता के अभिमानी की पूर्णता इस प्रकार होती है कि उसके इस देहेन्द्रियसंघात का विभाग किया जाता है और उसमें सारा कार्यकारणसमुदाय मन का अनुसरण करने वाला है। अतः प्रधान होने के कारण उसमें मन ही आत्मा के समान आत्मा<sup>15</sup> है। जैसे परिवार का स्वामी स्त्री आदि की आत्मा होता है क्योंकि स्त्री, पुत्र, धन तथा कर्म — ये चारों उसका अनुसरण करने वाले होते हैं उसी प्रकार यहाँ भी पूर्णता के लिए मन ही आत्मा है, ऐसा माना गया है।

जब मनुष्य ऐसा व्यवहार करता है कि मेरा मन अन्यत्र था इसलिए मैंने नहीं देखा, मेरा मन अन्यत्र था इसलिए मैंने नहीं सुना — इससे निश्चित होता है कि वह मन से ही देखता है और मन से ही सुनता है<sup>16</sup> अर्थात् जिसकी सन्निधि न होने पर रूपादि के ग्रहण में समर्थ नेत्रादि के होते हुए भी उन्हें अपने-अपने विषय का सम्बन्ध होने पर भी रूप एवं शब्दादि का ज्ञान नहीं होता और जिसके रहते हुए वह होता है वह उन नेत्रादि से भिन्न समस्त इन्द्रियों के विषय से सम्बन्ध रखने वाला मन नाम का अन्तःकरण है — ऐसा ज्ञात होता है। अतः सब लोग मन से ही देखते हैं और मन से ही सुनते हैं क्योंकि उसके व्यग्र होने पर दर्शन आदि क्रियाएँ नहीं होती।

साररूप में कह सकते हैं कि मनुष्य वह है जो उसका मन है। इन्द्रिय की प्रत्येक सूक्ष्मतम क्रिया के सञ्चालन के लिए उस इन्द्रिय का मन के द्वारा प्रेरित होना आवश्यक है यहाँ तक कि पलक झपकने का कार्य भी तभी सम्भव है। वेदों में मन के लिए चेतस्, प्रज्ञान तथा धृति — इन शब्दों का प्रयोग मिलता है<sup>17</sup>। चेतस् का सम्बन्ध चिन्तन करना, जानना तथा समझना क्रियाओं से है। इस प्रकार जो तत्त्वों को जानने तथा समझने वाला तत्त्व है वही चेतस् या मन है।

प्रज्ञान वस्तुतः मन की सर्वोत्कृष्ट स्थिति है, जिसमें आत्मानुभूति के आनन्द में उसे कुछ भी ज्ञातव्य नहीं रहता। धृति मन की धारणाशक्ति है। प्रज्ञा, चिन्तन तथा धारणाशक्तिरूप मन सभी प्रजाओं में अमरज्योति है जो सब प्राणियों में सब तत्त्वों को प्रकाशित करती है। यदि मन की प्रवृत्ति न हो तो अत्यन्त कुशल व्यक्ति भी कुछ कार्य नहीं कर सकता क्योंकि प्रत्येक कार्य को करने के लिए चित्त की एकाग्रता अनिवार्य है।

मनुष्य जो कर्म करता है वह कामना से युक्त होता है। मनु<sup>18</sup> के अनुसार वेद का अध्ययन करना तथा वेदोक्त कर्मों का सम्पादन करना भी कामना से प्रेरित होते हैं। इस प्रकार फल की अभिलाषा से युक्त रहना ही कामात्मता है। कामनाओं का मूल संकल्प है अर्थात् इस कर्म के द्वारा इस इष्ट फल की सिद्धि होगी, इस प्रकार की बुद्धि संकल्प कहलाती है<sup>19</sup>। तदनन्तर इष्ट साधनों को जान लेने पर उस कार्यविशेष को करने की इच्छा उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि इस संसार में मनुष्य जो भी कर्म करता है चाहे वह वैदिक हो या लौकिक इच्छा से ही प्रेरित होकर करता है<sup>20</sup>। यहाँ तक कि भोजन, गमन आदि क्रियाएँ भी इच्छा के कारण ही सम्पादित की जाती हैं। मन का तथा उससे उत्पन्न कामना का सृष्टि के क्रम में बहुत महत्त्व है। प्रजापति में सृष्टि करने से पूर्व एक से बहुत होने

की कामना उत्पन्न होती है<sup>21</sup>। इस प्रकार सृष्टि में सहायक मन प्राणियों में अमर ज्योतिरूप है और भूत, वर्तमान तथा भविष्य का नियामक भी<sup>22</sup>।

ऋग्वेद की ऋचायें, सामवेद के साम तथा यजुर्वेद के यजुष् मन्त्र — ये तीनों विद्याएँ ज्ञान की प्रतीक हैं। ये समस्त विद्याएँ इस मन से ऐसे सम्बद्ध हैं जैसे किसी यान के चक्र के केन्द्र से सभी अराएँ जुड़ी रहती हैं। तात्पर्य यह है कि मन के एकाग्र होने पर ही मनुष्य इन विद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और वह तभी सम्भव है जब मन स्वस्थ हो। मन के व्याकुल हो जाने पर तो ज्ञान प्राप्ति असंभव है<sup>23</sup>।

मनुष्य के भीतर प्रतिष्ठित मन अपरिमित शक्ति वाला तथा दिव्य है। मनुष्य जागृत अवस्था में अपनी कर्मेन्द्रियों के द्वारा अर्थात् हस्त और पाद से एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन करता है और अन्य लौकिक कर्तव्यों का पालन करते हुए क्रियाशील रहता है। परन्तु उसका मन न केवल उसकी जागृत अवस्था में बल्कि सुप्तावस्था में भी सतत गतिशील रहता है और कर्मेन्द्रियों के द्वारा किए जाने वाले कार्यों को करने में तथा ज्ञानेन्द्रियों के विषयों का ग्रहण करने में भी समर्थ है<sup>24</sup>। यहाँ अवसरसंगति से एक सांकेतिक लघु कथा का उद्धरण प्रासंगिक है— एक बार एक अत्यन्त धनी नगरसेठ विचारमग्न बैठा था और सोचविचार कर रहा था कि अपने इस व्यापार को सम्भालने के लिए जो सेवक नियुक्त कर रखे हैं उन्हें समय-समय पर सावधान करना पड़ता है, उन्हें सौंपे गए निश्चित कार्य के प्रति बार-बार स्मरण कराना पड़ता है, इत्यादि। इस प्रकार वह निरन्तर चिन्तन करता रहता था और सदा व्यग्र रहता था। एक दिन एक प्राणी उस धनी के पास आकर कहने लगा कि सेठजी मुझे काम पर रख लीजिए। मुझे जो कहेंगे वह मैं वह काम करूँगा और वेतन भी नहीं लूँगा। बस मेरी एक शर्त है कि आप मुझे काम देते रहेंगे। यदि कभी ऐसा हुआ कि आपने मुझे काम नहीं दिया तो मैं आपका सिर फोड़ दूँगा। यह सुनकर कि यह सभी काम कर लेगा और वेतन भी नहीं लेगा, सेठजी मन ही मन बहुत खुश हुए और सोचने लगे कि मैंने इतने सारे सेवक रखे हुए हैं और उनसे काम को अच्छी प्रकार से पूरा करवाने के लिए सदैव चिन्तित रहता हूँ और उन्हें वेतन भी देता हूँ। यदि एक ही व्यक्ति सारे कार्य कर लेता है और उसे वेतन भी नहीं देना पड़ता है तो इससे अच्छा विकल्प और क्या हो सकता है? सेठजी ने तुरन्त उस व्यक्ति की बात मान ली और उसे सारे काम समझा दिए। साथ ही अन्य सभी सेवकों को अवकाश दे दिया। समय बीतता गया, अब सेठजी के सभी कार्य समय पर पूर्ण हो जाते। अब वह प्रसन्न रहने लगे और उनका कारोबार निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता गया। निश्चित समय पर कार्य के समाप्त हो जाने पर एक समय ऐसा आया कि कुछ समय के लिए करने के लिए कोई काम शेष नहीं था। तब सेठजी के उस व्यक्ति को यह बताने पर कि इस समय उसके लिए कोई काम नहीं है वह बोला कि तुम मुझे काम दो नहीं तो शर्त के अनुसार मैं तुम्हारा सिर फोड़ दूँगा। यह सुनकर सेठजी बहुत घबराये। उन्हें कुछ भी नहीं सूझ रहा था। इस मुश्किल घड़ी में उन्हें अपने गुरुजी का स्मरण हुआ। वह उनके पास गये और सारी स्थिति बताकर मार्ग दिखाने की प्रार्थना करने लगे। गुरुजी ने सारी परिस्थिति को समझते हुए उन्हें उपाय बताया कि तुम अपने घर के आंगन में एक लम्बा यूप गाड़ दो और उस व्यक्ति से कहो कि जब तक मैं कोई काम न बताऊँ तब तक तुम इसी यूप पर चढ़ते और उतरते रहना है। सेठजी ने वैसा ही किया और उसके प्राण बच गए। इस कथा में वह प्राणी हमारा मन है जो निरन्तर गतिशील है। वह सबसे अधिक प्रभावशाली है। प्रत्येक मनुष्य में स्थित वह अतीन्द्रिय गूढतत्त्व सदैव कल्याणकारी तथा शुभ संकल्पों वाला हो — इसीलिए इस प्रकार वैदिक ऋषि प्रार्थना करता है। अन्यथा अशुभ अर्थात् विनाशकारी भावों से युक्त मन तो निश्चित रूप से मनुष्य के सर्वविध विकास में बाधक है। अतः मन के शान्त तथा संयम से युक्त होने पर ही असाधारण प्रतिभा का अर्जन किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि कुछ भी करने के लिए चित्त की

एकाग्रता अनिवार्य है। इसीलिए कहा गया है कि जब तक मन एकाग्र न हो, मनुष्य कोई भी विद्या ग्रहण नहीं कर सकता। जैसे वस्त्र के तन्तु एक दूसरे से गुँथे रहते हैं वैसे ही प्राणियों का समस्त चित्त अर्थात् ज्ञान – विज्ञान, चिन्तन मन में गुँथा रहता है। अथर्ववेद में भी सामनस्यम् सूक्त में परस्पर सौहार्द तथा सभी जनों में समभाव की भावना व्यक्त की गई है। काव्यात्मक भाषा में ऋषि अभिलाषा करता है कि परिवार के सभी सदस्य प्रेमपूर्वक रहें। जैसे गौ नवजात बछड़े के साथ पूर्णतः एकरूप हो जाती है अर्थात् बछड़े का खुश होना उसे प्रसन्न करता है और उसका कष्ट मानो गौ का अपना कष्ट होता है। इसी प्रकार सभी प्राणी समान मन वाले तथा सदभाव से युक्त हों<sup>25</sup>।

यदि मनुष्य आपस में विवाद करते रहते हैं तो दैवी शक्तियाँ भी मानो कलहरत हो जाती हैं अर्थात् उन शक्तियों से जो कुछ प्राप्त होता है, मनुष्य उसका शान्तिपूर्वक उपभोग नहीं कर सकता। यदि मनुष्यों में सहानुभूति की भावना हो और शत्रुता का भाव नहीं हो तो देवता अर्थात् दैवी शक्तियाँ विमुख नहीं होती। ऐसा होने पर मनुष्य समभाव से सुखपूर्वक उपभोग करके आनन्द को प्राप्त करते हैं<sup>26</sup>। समान लक्ष्य तथा विचार वाले, साथ साथ चलने, कार्य करने वाले और एक समान गति वाले मनुष्यों का मन स्वाभाविक रूप से समान हो जाता है। परस्पर वैमनस्य से द्वेष बढ़ता है जो निश्चित ही स्वस्थ परिवार, समाज तथा देश के लिए कल्याणकारी नहीं है। इस प्रकार समाज की ईकाईरूप परिवार में परस्पर समभाव से निश्चित रूप से समाज भी सौमनस्य के भाव से युक्त होगा क्योंकि समाज में समभाव का आधार परिवार ही होता है। जिस समाज में समान उद्देश्य तथा परस्पर सौमनस्य के भाव से युक्त होकर कार्य किया जाता है तो वह परिवार, समाज और देश समान मनन, चिन्तन और तदनु रूप संगठन से निस्सन्देह प्रगति तथा समृद्धि के पथ पर अग्रसर होता रहेगा।

### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः – तैत्तिरीय-संहिताभाष्यभूमिका
2. तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु। वा. स., 34।1
3. श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी। पायूपस्थं हस्तपादं वाक्चैव दशमी स्मृता।। मनुस्मृति 2।90
4. बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः। कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते।। वही, 2।91
5. एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्। यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ।। वही, 2।92
6. आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेणेन्द्रियमर्थनेति न्यायोक्तेर्मनःसम्बन्धमन्तरा तेषामप्रवृत्तेः। वैदिकसंग्रह, डा. कृष्णलाल, 1985, पृ. 179
7. इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्। आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।। कठोपनिषद् 1।3।4
8. आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।। वही, 1।3।3
9. यस्त्वविज्ञानवान्भवत्युक्तेन मनसा सदा। तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः।। वही, 1।3।5
10. यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा। तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः।। वही, 1।3।6  
द्रष्टव्य सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु। वा. स. 34।6
11. मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन। मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति।। कठोपनिषद् 2।1।11
12. मनो निधनम्। छान्दोग्योपनिषद् 2।7।1
13. मनो ह वा आयतनम्। वही, 5।1।5
14. मन्वानो मनः। बृहदारण्यकोपनिषद् 1।4।17

15. मन एवास्यात्मा। वही, 1।4।17
16. मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति। वही, 1।5।3
17. यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्च न कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। वाजसनेयी संहिता 34।3
18. कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता। काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः।। मनुस्मृति 2।2
19. संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः। व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः।। वही, 2।3
20. अकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नेह कर्हिचित्। यद्यद्धि कुरुते किञ्चित्कामस्य चेष्टितम्।। वही, 2।4
21. प्रजापतिरकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति। ताण्ड्यब्राह्मण, 2।2।5 – वैदिकसंग्रह, डा. कृष्णलाल, 1985, पृ. 183 से उद्धृत।
22. येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। वाजसनेयी संहिता 34।4
23. यस्मिन्नुचः साम यजूषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। वही, 34।5
24. यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। वही 34।1
25. सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।। अथर्ववेद 3।30।1
26. येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः। तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः।। वही, 3।30।4